इकाई 10 अग्नि (1.1), इन्द्र (2.12), सवितृ (1.35), शिवसंकल्प (34.1-6)

इकाई की रूपरेखा

10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप –

- ऋग्वेद के प्रमुख सूक्तों का ज्ञान प्राप्त कर सकेंगे।
- अग्नि, इन्द्र, सविता आदि के कर्म, गुण एवं स्वरूपों के वैदिक आधार से अवगत हो सकेंगे।
- विविध सूक्तों के वर्ण्य-विषय से परिचित होकर तत्सम्बद्ध माहात्म्य का वर्णन कर सकेंगे।
- प्रकृत सूक्तों के अध्ययन से वैदिक शब्दावली एवं विषयों में अवगाहन कर सकेंगे।

10.1 प्रस्तावना

वैदिक साहित्य विश्व में प्राचीनतम है। वेद के दो भाग हैं– मन्त्र एवं ब्राह्मण। मन्त्रों का संकलन संहिता ग्रन्थों में है तथा ब्राह्मण साहित्य संहिताओं के व्याख्यान ग्रन्थ हैं। इन संहिताओं में ऋग्वेद की शाकल संहिता प्राचीनतम है। इसमें दश मण्डल हैं तथा प्रत्येक के अन्तर्गत सूक्त तथा सूक्तों में मन्त्रों का संकलन है। प्रकृति से सम्बद्ध अग्नि, सूर्य, इन्द्र, वरुण, पर्जन्य, मरुत् प्रभृति विषयों को समाहित कर सूक्तों का वर्णन है। ये सूक्त प्रकृति के रहस्यों से परिपूर्ण हैं तथा उनमें मानव कल्याण तथा प्रकृति चित्रण के माध्यम से अनेक विषयों का सराहनीय वर्णन है। प्रकृति के सूक्ष्मतम चित्रण से ओत-प्रोत ये सूक्त ऐसी अनेक जानकारियाँ प्रदान करते हैं, जो हमारे राष्ट्र एवं समाज के लिये अत्यावश्यक हैं। यहाँ हम ऐसे ही कतिपय प्रमुख सूक्तों का अध्ययन करेंगे।

10.2 अग्नि (ऋग्वेद 1.1)

ऋषि – विश्वामित्र, देवता – अग्नि।
ओ३म् अग्निमीळे पुरोहितं, यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्।।1।।

अन्वय – (अहम्) यज्ञस्यपुरोहितं देवम् ऋत्विजं, होतारं, रत्नधातमम् अग्निम् ईले।

शब्दार्थ – अग्निम् = अग्नि देवता की, ईळे = स्तुति करता हूँ, पुरोहितम् = यज्ञादि में प्रतिपद अभीष्ट के सम्पादक, यज्ञस्य = यज्ञ के, देवम् = दानादिगुणयुक्त, ऋत्विजम् = ब्रह्मा प्रभृति में से एक, होतारम् = देवताओं का आह्वान करने वाले, रत्नधातमम् = यज्ञफलरूपी रत्न/धन प्रदान करने वाला।

अनुवाद – मैं यज्ञ के पुरोहित, दानादिगुणयुक्त अथवा देवरूप होता की भूमिका ऋत्विक् तथा यज्ञ के परिणामतः धन/रत्न प्रदान करने वालों में सर्वश्रेष्ठ अग्निदेवता की (मैं) स्तुति करता हूँ।

व्याकरण – **रत्नधातमम्** = रत्नानि अतिशयेन दधाति इति रत्नधातमः तम् रत्न+धा+क्विप्+तमप्+अम्, **पुरोहितम्** = पुरः अव्ययपूर्वक धा धातु से क्त प्रत्यय करने पर अनुबन्धलोप होने पर, दधातेर्हि सूत्र से धा इसके स्थान पर हि यह आदेश होने पर पुरोहितम् पद निष्पन्न होता है।

विशेष – अग्निर्वैदेवानां होता (ऐतरेयब्राह्मणम् 3.18) **अग्नि** देवताओं का होता है।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत।
स देवाँ एह वक्षति।।2।।

अन्वय – अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिः उत नूतनैः (ऋषिभिः) ईड्यः। सः देवान् इह आवक्षति।

शब्दार्थ – अग्निः = अग्नि देवता, पूर्वेभिः = प्राचीन, ऋषिभिः = मन्त्रद्रष्टा ऋषियों द्वारा, ईड्यः = स्तुत्य है, नूतनैः = अर्वाचीन, उत और, सः = वह, देवान् = देवताओं को, इह = यहाँ यज्ञ में, आ वक्षति = लाये।

अनुवाद – (जो) अग्नि प्राचीन तथा अर्वाचीन ऋषियों के द्वारा स्तुत्य है, वह देवताओं को यहाँ यज्ञ में लाये।

व्याकरण – **ईड्य** = ईड् स्तुतौ धातु से ण्यत् प्रत्यय करने पर निष्पन्न। **देवाँ** = देवान्+(आ+इह) एह ऐसा होने पर **दीर्घादटि समानपदे** से न का रुत्व एवं **आतोऽटि नित्यम्** से सानुनासिक आकार (आँ)।

विशेष – गत्यर्थक ऋष् धातो से इन् प्रत्यय करने पर ऋषि शब्द निष्पन्न होता है।

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम्।।3।।

अन्वय – (जनः) अग्निना एव पोषं यशसं वीरवत्तमं रयिं दिवे दिवे अश्नवत्।

शब्दार्थ – अग्निना = अग्नि से/के द्वारा, रयिम् = धन, अश्नवत् = प्राप्त करे, पोषम् = पुष्टि प्रदान करने वाला, एव = ही, दिवेदिवे = प्रतिदिन, यशसम् = दानादि के द्वारा कीर्ति से युक्त, वीरवत्तमम् = अतिशय वीर पुत्रों से युक्त।

अनुवाद – यजमान अग्नि से प्रतिदिन नित्य वर्धनशील, कीर्तिदायक एवं अतिशय वीर पुत्रों से युक्त धन प्राप्त करे।

व्याकरण – **वीरवत्तमम्** = वीर शब्द से मतुप् प्रत्यय फिर तमप्, **पोषम्** = पुष् धातु घञ् प्रत्यय।

विशेष – यहाँ प्रयुक्त रयिशब्द धनवाचक है।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं, विश्वतः परिभूरसि।
स इद्देवेषु गच्छति।।4।।

अन्वय – (हे) अग्ने यम् अध्वरं यज्ञं विश्वतः परिभूः असि, सः इत् देवेषु गच्छति।

शब्दार्थ – अग्ने = हे अग्नि, यम् = जिस, यज्ञम् = यज्ञ को, अध्वरम् = हिंसारहित, विश्वतः = सर्वतः, परिभूः = व्याप्त करने वाले, असि = हो, सः = वह, इत् = ही, देवेषु = देवताओं में, गच्छति = पहुंचता है।

अनुवाद – हे अग्नि, जिस हिंसारहित यज्ञ को (तुम) चारों तरफ से व्याप्त करने वाले (होते) हो, वही (यज्ञ) देवताओं में पहुँचता है।

व्याकरण – **परिभूः** = परि+भू+क्विप्, परितो भवति, **इत्** = ऋचा में प्रयुक्त होने पर निश्चयार्थक होता है।

विशेष – ध्वर हिंसार्थक है, जहाँ उसका प्रतिषेध है वह, **अध्वरम्।**

अग्निर्होता कविक्रतुः, सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरा गमत्।।5।।

अन्वय – अग्निः होता कविक्रतुः सत्यः चित्रश्रवस्तमः।(सः) देवः देवेभिः (अस्मिन् यज्ञे) आ गमत्।

शब्दार्थ – अग्निः = अग्नि देवता, होता = देवताओं का आह्वान करने वाला, कविक्रतुः = सर्वक्रान्तप्रज्ञावाला अर्थात् जिसकी प्रज्ञा सब कुछ जानने वाली हो, सत्यः = असत्य से रहित, चित्रश्रवस्तमः = अतिशय रूप से विविध कीर्तियुक्त, देवः = हविर्ग्राहक, देवेभिः = देवताओं के साथ, आ गमत् = आये।

अनुवाद – (देवताओं का) आह्वान करने वाला, सर्वक्रान्तप्रज्ञावाला, सत्यरूप, अतिशय विविध कीर्ति-सम्पन्न तथा प्रकाशक अग्नि देवताओं के साथ (यहाँ इस यज्ञ में) आये।

व्याकरण – **देवेभिः** = देव शब्द भिस् विभक्ति तृतीया बहुवचन, बहुलं छन्दसि सूत्र से भिस् ऐसा देशाभाव।

विशेष – क्रान्त प्रज्ञा युक्त अथवा क्रान्त कर्म से युक्त, **कविक्रतुः।**

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः।।6।।

अन्वय – (हे) अग्ने अङ्ग, यत्त्वं दाशुषे भद्रं करिष्यसि, (हे) अङ्गिरः, तत् तव इत् (इति एतत्) सत्यम्।

शब्दार्थ – यत् = जो, अङ्ग अभिमुख अर्थात् सम्मुख करने के अर्थ में प्रयुक्त निपात, दाशुषे = हवि प्रदान करने वाले यजमान के लिये, त्वम् = तुम, अग्ने = हे अग्नि, भद्रम् = कल्याण, करिष्यसि = करोगे, तव = तुम्हारा, इत् = ही, तत् = वह, सत्यम् = सत्य है, अङ्गिर = हे अङ्गिरस नाम ऋषि के कारण प्रथमतया समानीत अग्नि अथवा हे अङ्गारों में उत्पन्न होने वाले अग्नि।

अनुवाद – हे अग्नि, (हवि) प्रदान करने वाले (यजमान) के लिये उसके सम्मुख तुम जो कुछ कल्याण (प्रदान) करोगे, हे अङ्गारों में उत्पन्न होने वाले अग्नि, वह (सब) तुम्हारा ही है, यह सत्य है।

व्याकरण – **दाशुषे** दानार्थक दाशृ धातु से क्वसु प्रत्यय करने पर दाश्वस्, के चतुर्थी का एकवचन।

विशेष – शाट्यायन शाखा में भद्र शब्दार्थः यद्वै पुरुषस्य वित्तं तद् भद्रम्, गृहा भद्रं, प्रजा भद्रं, पशवो भद्रमिति।

उप त्वाग्ने दिवेदिवे, दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि।।7।।

अन्वय – हे अग्ने, त्वा उप दिवेदिवे दोषावस्तः धिया नमो भरन्तः वयम् एमसि।

शब्दार्थ – उप = समीप, त्वा = तुम्हारे, अग्ने = हे अग्नि, दिवेदिवे = प्रतिदिन, दोषावस्तः = हे अन्धकार को प्रकाश करने वाले, धिया = बुद्धि अथवा कर्म के अनुसार, वयम् = हम, नमः = नमस्कार या स्तुति, भरन्तः = करते हुये, आ इमसि = आते हैं।

अनुवाद – हे अन्धकार को प्रकाश में परिवर्तित करने वाले अग्नि, प्रतिदिन हम (अपनी) बुद्धि के अनुसार नमस्कार करते हुये तुम्हारे पास आते हैं।

व्याकरण – **भरन्तः** हृञ् हरणे धातु से शतृ प्रत्यय तथा **हृग्रहोर्भश्छन्दसि** वार्तिक से ह के स्थान पर भ।

विशेष – रात्रि एवं दिवस, **दोषावस्तः।**

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्।
वर्धमानं स्वे दमे।।8।।

अन्वय – हे अग्ने, राजन्तम्, अध्वराणां गोपाम्, ऋतस्य दीदिविम् स्वे दमे वर्धमानम् (त्वा उपाएमसि)

शब्दार्थ – राजन्तम् = दीप्यमान, अध्वराणाम् = यज्ञों के, गोपाम् = संरक्षक, ऋतस्य = सत्य के, दीदिविम् = अत्यन्त प्रकाशमान, वर्धमानम् = बढ़ने वाले, स्वे = अपने, दमे = यज्ञशाला में।

अनुवाद – यज्ञों के संरक्षक, सत्य के पालक, अत्यन्त प्रकाशमान तथा अपने घर (यज्ञशाला) में (नित्य) बढ़ने वाले (अग्नि के पास हम प्रतिदिन आते हैं)।

व्याकरण – **गोपाम्** गाः पातीति गोपाः, गो+पा+क्विप्, तम्, **राजन्तम्** दीप्त्यर्थक राज् धातु शतृ प्रत्यय पुंल्लिंग द्वितीया एकवचन।

विशेश – **दम** शब्द गृह का वाचक है।

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये।।9।।

अन्वय – (हे) अग्ने, सः (त्वम्) सूनवे पिता इव नः सूपायनः भव। नः स्वस्तये सचस्व।

शब्दार्थ – सः = पूर्वोक्त गुणयुक्त वह अग्नि, नः = हमारे लिये, पितेव = पिता के समान, सूनवे = पुत्रार्थ, अग्ने = हे अग्नि, सूपायनः = अच्छी प्रकार से अर्थात् सरलता से पहुँचने योग्य, भव = हो, सचस्व = साथ हो जाओ, नः = हमारे, स्वस्तये = कल्याण के लिये।

अनुवाद – (पूर्वोक्त गुणसम्पन्न) वह (तुम) हे अग्नि, हमारे लिये सरलता से पहुँच के योग्य हो जाओ, जिस प्रकार पिता (अपने) पुत्र के लिये होता है। (हे अग्नि) हमारे कल्याण के लिये (तुम) हमारे साथ रहो।

व्याकरण – **सूपायनः** सूप एवं उप उपपदपूर्वक अयतेर्युच् तथा युवोरनाकौ से य के स्थान पर अनादेश।

विशेष – कल्याणकारी वचन, **स्वस्ति।**

10.3 इन्द्र (ऋग्वेद 2.12)

ऋषि – गृत्समद, देवता – इन्द्र।

यो जात एव प्रथमो मनस्वान्देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद्रोदसी अभ्यसेतां, नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः।।1।।

अन्वय – यः प्रथमः मनस्वान् देवः जातः एवक्रतुना देवान् पर्यभूषत्। यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम्। हे जनासः, नृम्णस्य मह्ना स इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यः = जो, जातः = उत्पन्न होकर, एव = ही, प्रथम = सर्वप्रथम, मनस्वान् = बुद्धिमान्, मनस्वी, देवः = देव ने, देवान् = देवताओं को, क्रतुना = पराक्रम से, पर्यभूषत् = आधिपत्य स्थापित किया, यस्य = जिसके, शुष्मात् = शारीरिक शक्ति से, रोदसी = द्युलोक तथा पृथिवी, अभ्यसेताम् = कांपते हैं, नृम्णस्य = महान् बल की, मह्ना = महिमा से, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिस प्रधान बुद्धिमान् देव ने उत्पन्न होते ही अपने पराक्रम से सर्वप्रथम देवताओं पर पराभूय कर आधिपत्य प्राप्त किया, महान् बल के कारण जिसकी शक्ति के सामने द्युलोक तथा पृथिवी कांपते हैं, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **अभ्यसेताम्** = भयार्थक भ्यस **भ्यस भयवेपनयोः** इति नैरुक्त मतानुसार।

विशेष – युग्मार्थक द्युलोक एवं भूलोक **रोदसी।**

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान्प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात्स जनास इन्द्रः।।2।।

अन्वय – यः व्यथमानाम् पृथिवीम् अदृंहत्, यः प्रकुपितान् पर्वतान् अरम्णात्, यः अन्तरिक्षम् वरीयः विममे, यः द्याम् अस्तभ्नात् (हे) जनासः सः इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यः = जिस इन्द्र ने, पृथिवीम् = पृथिवी को, व्यथमानाम् = कांपती हुई, अदृंहत् = स्थिर किया, यः = जिसने, पर्वतान् = पर्वतों को, प्रकुपितान् = इधर-उधर उड़ने वाले, अरम्णात् = स्थापित किया, यः = जिसने, अन्तरिक्षम् = अन्तरिक्ष को, विममे = विस्तृत किया, वरीयः = अधिक चौड़ा, यः = जिसने, द्याम् = द्युलोक को, अस्तभ्नात् = स्तम्भित किया, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिसने कांपती हुई पृथिवी को स्थिर किया, जिसने (इधर-उधर) उड़ने वाले पर्वतों को (अपने-अपने स्थान पर) स्थापित किया, जिसने अन्तरिक्ष लोक को चौड़ाई में विस्तृत किया, जिसने द्युलोक को स्तम्भित किया, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **अदृंहत्** = वृद्ध्यर्थक दृह् धातु लङ् लकार, प्रथम पुरुष एकवचन।

विशेष – पर्वतों के प्राचीन काल में उड़ने और स्तम्भन का वर्णन है।

यो हत्वाहिमरिणात्सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा बलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक्समत्सु स जनास इन्द्रः।।3।।

अन्वय – यः अहिम् हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात्, यः बलस्य अपधा गाः उदाजत्, यः अश्मनोः अन्तः अग्निम् जजान, (यः) समत्सु संवृक्, (हे) जनासः, स इन्द्रः(अस्ति)।

शब्दार्थ – यः = जिसने, हत्वा = मारकर, अहिम् = सर्पाकार मेघ को, अरिणात् = प्रवाहित किया, सप्त = सात, सिन्धून् = समुद्रों/नदियों को, यः = जिसने, गाः = गायों को, उदाजत् = निकाला, अपधा = गुफा से, बलस्य = बल नामक असुर की, यः = जिसने, अश्मनोः = मेघों के या पत्थरों के, अन्तः = बीच, अग्निम् = अग्नि को, जजान = उत्पन्न किया, संवृक् = संहार करने वाला, समत्सु = संग्रामों में, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिसने सर्पाकार मेघों को मारकर सात समुद्रों/नदियों को प्रवाहित किया, जिसने बल की गुफा से गायों को निकाला, जिसने मेघों के बीच (विद्युत्) अग्नि को उत्पन्न किया, (जो) युद्धों में (शत्रु का) संहार करने वाला है, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **अश्माः** = अश्नुते अन्तरिक्ष को व्याप्त करता है अर्थात् मेघ।

विशेष – जल से अग्नि की उत्पत्ति का विशेष सन्दर्भ है।

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि, यो दासं वर्णमधरं गुहाकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाद्, अर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः।।4।।

अन्वय – येन इमा विश्वा च्यवना कृतानि, यः दासं वर्णम् गुहा अधरं अकः, यः श्वघ्नी इव लक्षं जिगीवान्, अर्यः पुष्टानि आदत् (हे) जनासः सः इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – येन = जिसके द्वारा, इमा = ये, विश्वा = सम्पूर्ण, च्यवना = नश्वर/गतिमान्, कृतानि = की गयी हैं, यः = जिसने, दासम् = दास, वर्णम् = जाति को, अधरं = नीच, गुहा = गुफाओं में, अकः = किया, श्वघ्नीव = व्याध (बहेलिया) की तरह, जिगीवान् = जीतकर, लक्षम् = शिकार को, आदत् = ग्रहण किया, अर्यः = शत्रु के, पुष्टानि = रक्षित धन को, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिसके द्वारा ये सम्पूर्ण (पदार्थ) बनाये गये, जिसने नीच/दास जाति को गुफाओं में भेज दिया, जिसने जीतकर शत्रु के रक्षित धन को ग्रहण किया जैसे शिकारी अपने शिकार को, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **अकः** = अकार्षीत् अर्थात् किया, **श्वघ्नीः** = श्वभिः कुत्तों के द्वारा जो मृगों का मारण करवाता है अर्थात् व्याध।

विशेष – इन्द्र की शत्रु विजय का विशेष वर्णन किया गया है।

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरम् उतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विज इवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः।।5।।

अन्वय – यम् (जनाः) पृच्छन्ति स्मः, कुह सः इति, उत ईम् एषः न अस्ति इति एनम् आहुः। सः विजः इव अर्यः पुष्टीः आमिनाति। (हे) जनास सः इन्द्रः अस्ति। अस्मै श्रद् धत्त।

शब्दार्थ – यम् = जिसके, स्म = प्रश्न पूछने का वाचक एक निपात, पृच्छन्ति = पूछते हैं, कुह = कहाँ, सः = वह, इति = ऐसा, घोरम् = भयानक, उत = और, ईम्= उसके विषय में, आहुः = कहते है, न = नहीं, एषः = यह, अस्ति = है, इति = ऐसा, एनम् = इसको, सः = वह, अर्यः = शत्रु-सम्बन्धी, पुष्टीः = रक्षित धन, विज इव = उत्तेजित होते हुये की तरह, आ = चारों तरफ से, मिनाति = नष्ट करता है, श्रत् = श्रद्धा, अस्मै = उसके लिये, धत्त = धारण करो, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिस भयानक इन्द्र के विषय में वह कहाँ है, ऐसा (वे) पूछते आये हैं, तथा वह नहीं है ऐसा भी वे उसी के ही विषय में कहते हैं, वह उत्तेजित होते हुये की तरह शत्रु के रक्षित धन को चारों तरफ से विनष्ट करता है, उसमें श्रद्धा/विश्वास रखो, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **ईम्** = यह पादपूर्त्यर्थक निपात है, **मिनाति** = हिंसार्थक मीञ् में **मीनातेर्निगमे** प्रकृत पाणिनीय सूत्र से ह्रस्व।

विशेष – **अर्यः** = अरेः अर्थात् शत्रुसम्बन्धी।

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्राह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः।।6।।

अन्वय – यः रध्रस्य चोदिता (अस्ति), यः कृशस्य, यः ब्रह्मणः, (यः) नाधमानस्य कीरेः (चोदिता अस्ति), यः सुशिप्रः युक्तग्राव्णः सुतसोमस्य (च) अविता (अस्ति) (हे) जनासः स इन्द्रः अस्ति।

शब्दार्थ – यः = जो, रध्रस्य = धनवान् का, चोदिता = प्रेरक, यः = जो, कृशस्य = निर्धन का, यः = जो, ब्राह्मणः = पुरोहित का, नाधमानस्य = सहायता चाहने वाले का, कीरेः = स्तुति गायक का, युक्तग्राव्णः = सोम पीसने के लिये पत्थरों को तैयार करने वाले का, यः = जो, अविता = रक्षक, सुशिप्रः = सुन्दर ओष्ठ वाला, सुतसोमस्य = सोम पीसने वाले का, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः =इन्द्र है।

अनुवाद – जो धनवान् का प्रेरक है, जो निर्धन का (प्रेरक है), जो सहायता चाहने वाले स्तुतिगायक पुरोहित का (प्रेरक है), सोम पीसने के लिये पत्थरों को तैयार किया

है तथा सोम पीस लिया है, जिसने ऐसे (यजमान) का जो सुन्दर ओष्ठ वाला सहायक है, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – नाधमानस्य = नाधृ णाधृयाच्ञोपतापैश्वर्याशीः षु सूत्र से लट् में शानच् प्रत्यय।

विशेष – शोभन हनु/सिर वाला **सुशिप्रः।**

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः।।7।।

अन्वय – यस्य, प्रदिशि अश्वासः, यस्य (प्रदिशि) गावः, यस्य (प्रदिशि) ग्रामाः, यस्य (प्रदिशि) विश्वे रथासः (वर्तन्ते), यः सूर्यं यः उषसं जजान, यः अपां नेता, (हे) जनासः स इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यस्य = जिसके, अश्वासः = घोड़े, प्रदिशि = आज्ञा में, यस्य = जिसकी, गावः = गायें, यस्य = जिसके, ग्रामाः = गाँव, यस्य = जिसके, विश्वे = सम्पूर्ण, रथासः = रथ, यः = जो, सूर्यम् = सूर्य को, यः = जो, उषसम् = उषा को, जजान = उत्पन्न किया, यः = जो, अपाम् = जल का, नेता = ले जाने वाला, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिसकी विशिष्ट आज्ञा में अश्व हैं, जिसकी (आज्ञा में) गायें है, जिसकी (आज्ञा में) गाँव (जनपद) हैं, जिसकी (आज्ञा में) सम्पूर्ण रथ हैं, जिसने सूर्य तथा उषा को जन्म दिया, जो जल का नेता है, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – ग्रामाः = ग्रसतेऽत्रेति इति ग्रामाः जनपद।

विशेष – इन्द्र के शासन का वर्णन यहाँ किया गया है।

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेतेपरेऽवर उभया अमित्राः।
समानं चिद्रथमातस्थिवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः।।8।।

अन्वय – यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते, (यं) परे अवरे उभयाः अमित्राः (हवयन्ते), (यं) समानं चिद् रथम् आतस्थिवांसा नाना हवेते, (हे) जनासः, सः इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यम् = जिसको, कन्दसी = जोर से चिल्लाती हुई, संयती = एकसाथ (युद्ध में) जाती हुई, विह्वयेते = विभिन्न प्रकार से बुलाती है, परे = शक्तिशाली, अवरे = निर्बल, उभयाः = दोनों, अमित्राः = शत्रु, समानम् = एक ही, चित् = निश्चित अर्थ का वाचक एक निपात, रथम् = रथ पर, आतस्थिवांसा = बैठे हुये, नाना = अलग-अलग, हवेते = बुलाते हैं, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिसको जोर से चिल्लाती हुई (तथा) एकसाथ (युद्ध में) जाती हुई (दोनों शत्रु-सेनायें) विभिन्न प्रकार से बुलाती हैं, जिसको शक्तिशाली तथा निर्बल दोनों शत्रु-दल (अपनी सहायता के लिये) बुलाते हैं, जिसको एक ही रथ पर बैठे हुए दो रथी अलग-अलग (अपनी सुरक्षा के लिए) बुलाते हैं, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – कन्दसी = रोदसी अर्थात् द्युलोक एवं भूलोक दोनों को व्याप्त करने वाली ध्वनि।

विशेष – विजय में सहायक इन्द्र की प्रार्थना का उल्लेख प्राप्त होता है।

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः।।9।।

अन्वय – यस्मात् ऋते जनासः न विजयन्ते, यं युध्यमानाः अवसे हवन्ते, यः विश्वस्य प्रतिमानं बभूव, यः अच्युतच्युत् (हे) जनासः, स इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यस्मात् = जिसके, न = नहीं, ऋते = विना, विजयन्ते = विजय प्राप्त करते हैं, जनासः = मनुष्य, यम् = जिसको, युध्यमानाः = युद्ध करते हुए, अवसे = सहायता के लिये, हवन्ते = बुलाते हैं, प्रतिमानम् = प्रतिरूप, बभूव = हुआ, यः = जो, अच्युतच्युत् = स्थिरों को भी गतिशील करने वाला, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिसके बिना मनुष्य विजय नहीं प्राप्त करते, जिसको युद्ध करते हुए (सैनिक अपनी) सहायता/रक्षा के लिए बुलाते हैं, जो सबका प्रतिरूप है, जो स्थिर को गतिमान करने वाला है। हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **अच्युताच्युत्** = अच्युतानां क्षयरहितानां पर्वतादीनां च्यावयिताच्युति एवं क्षय रहित पर्वतादियों का प्रेरक।

विशेष – गति एवं क्षय रहित पर्वतों का प्रेरक इन्द्र को बताया गया है।

यः शश्वतो मह्येनो दधानान् अमन्यमानाञ्छर्वा जघान।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता स जनास इन्द्रः।।10।।

अन्वय – यः शश्वतः महि एनः दधानान् अमन्यमानान् (जनान्) शर्वा जघान, यः शर्धते शृध्यां न अनुददाति, यःदस्योः हन्ता, (हे) जनासः, स इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यः = जिसने, शश्वतः = अनेक, महि = बड़ा, महान्, एनः = पाप, दधानान् = धारण करने वालों को, अभिमानियों को, शर्वा = वज्र से, जघान = मारा, यः = जो, शर्धते = उत्साही के लिये, न = नहीं, अनुददाति = क्षमा करता है, शृध्याम् = उत्तेजनात्मक उत्साह को, यः = जो, दस्योः = दस्यु जाति को, हन्ता = मारने वाला, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र।

अनुवाद – जिसने अनेक भयानक पाप करने वालों को, जो (इसका) आदर नहीं करते थे, अपने वज्र से मारा, जो उत्साही (व्यक्ति) के (उत्तेजनात्मक) उत्साह को क्षमा नहीं करता, जो दस्यु का घातक है, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **शर्वा** = शृणाति शत्रूनेनेति शरुर्वज्रः, तृतीया एकवचन।

विशेष – दस्युओं से रक्षणार्थ भी इन्द्र विशेषतया स्तुत्य था।

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः।।11।।

अन्वय – यः पर्वतेषु क्षियन्तं शम्बरं चत्वारिंश्यां शरदि अन्वविन्दत्। ओजायमानम् अहिं शयानं दानुं (च) जघान, हे जनासः स इन्द्रः(अस्ति)।

शब्दार्थ – पर्वतेषु = शैलों पर, क्षियन्तम् = निवास करने वाले, चत्वारिंश्यां = चालीसवें, शरदि = वर्ष में, अन्वविन्दत् = खोजकर प्राप्त किया, ओजायमानं = शक्ति

का प्रदर्शन करने वाले, अहिं = सर्परूप में, शयानं = सुप्त, दानुम् = दानव को, जघान = मार डाला।

अनुवाद – जिसने पहाड़ों में रहने वाले शम्बर (नाम के राक्षस) को चालीसवें वर्ष (सुदीर्घकाल के अनन्तर) में खोज लिया तथा जिसने बल का प्रदर्शन करने वाले सर्परूप (या हन्ता) एवं लेटे हुए दानव (उस शम्बर) को मार डाला, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **चत्वारिंश्यां शरदि** = चालीस शरद् के अनन्तर अर्थात् बहुकालानन्तर।

विशेष – **शम्बराख्य** = दैत्य के वध का वर्णन प्राप्त होता है।

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान् अवासृजत्सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः।।12।।

अन्वय – यः सप्तरश्मिः वृषभः तुविष्मान् सप्त सिन्धून् सर्तवे अवासृजत्, यः वज्रबाहुः द्याम् आरोहन्तम् रौहिणम् अस्फुरत्, (हे) जनासः, सः इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यः = जिसने, सप्तरश्मिः = सात किरणों वाले, वृषभः = वर्षा करने वाले, तुविष्मान् = बलवान्, अवासृजत् = मुक्त किया, सर्तवे = बहने के लिये, सप्त = सात, सिन्धून् = नदियों को, यः = जिसने, रौहिणम् = रौहिण नामक अनावृष्टि के राक्षस को, अस्फुरत् = मार दिया, वज्रबाहुः = वज्र धारण करने वाले ने, द्याम् = द्युलोक पर, आरोहन्तम् = चढ़ते हुये, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जिस सात किरणों वाले, शक्तिशाली ने सात नदियों को बहने के लिये मुक्त किया। जिस वज्र धारण करने वाले ने आकाश पर चढ़ते हुये रौहिण (अनावृष्टि) नामक असुर का वध किया, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **अस्फुरत्** = स्फुर स्फुरणे, तुदादिगण, यहाँ मारने के अर्थ में प्रयुक्त है।

विशेष – सप्त रश्मिः का सन्दर्भ **वराहवः स्वतपसो विद्युन्महसो धूपयः श्वापयो गृहमेधाश्चेत्येते ये चेमेऽशिमिविद्विषः पर्जन्याः सप्त पृथिवीमभिवर्षन्ति वृष्टिभिः** तैत्तिरीय आरण्यक (1.9.4-5) में प्राप्त होता है।

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर् यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः।।13।।

अन्वय – अस्मै द्यावा पृथिवी चित् नमेते। अस्य शुष्मात् पर्वताः चित् भयन्ते। यः सोमपा निचितः, वज्रबाहुः, यः वज्रहस्तः, (हे) जनासः स इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – अस्मै = इन्द्र के लिये, द्यावापृथिवीम् = द्युलोक और भूमि, चित् = ही, नमेते = प्रणाम करते हैं, अस्य = इसके, शुष्मात् = बल से, पर्वताः = पर्वत, भयन्ते = डरते हैं, यः = जो इन्द्र, सोमपा = सोमरस का आस्वादक, निचितः = कहा गया है, वज्रबाहुः = वज्र के समान, दृढ़ भुजा वाला, वज्रहस्तः = कुलिश (इन्द्र का वज्र नामक शस्त्र) को हाथ में रखने वाला, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – उस (इन्द्र) के सामने द्युलोक और पृथ्वी लोक भी झुक जाते हैं, उसकी शक्ति से पर्वत भी भयाक्रान्त रहते हैं, जो **सोमपान करने वाला** इस रूप में प्रसिद्ध है (अथवा दृढ़ अंगो से युक्त है), वज्र के समान भुजाओं वाला है तथा जिसके हाथ में भी व्रज है, हे मनुष्यों वही इन्द्र है।

व्याकरण – **चित्** निपात का प्रयोग सर्वत्र भी के अर्थ में है।

विशेष – इन्द्र के सोमपा होने का विशेष उल्लेख प्राप्त होता है।

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः।।14।।

अन्वय – यः सुन्वन्तम् अवति, यः पचन्तम्, यः ऊती शंसन्तं, यः शशमानम् (अवति)। यस्य ब्रह्मवर्धनं (भवति), यस्य सोमः, यस्य इदं राधः, (हे) जनासः, स इन्द्रः (अस्ति)।

शब्दार्थ – यः = जो, सुन्वन्तम् = पीसने वाले की, अवति = रक्षा करता है, यः = जो, पचन्तम् = पुरोडाशादि हविरन्न पकाने वाले को, यः = जो, शंसन्तम् = प्रशंसा करने वाले को, यः = जो, शशमानम् = परिश्रम करने वाले को, ऊती = सहायता से, यस्य = जिसका, ब्रह्म = प्रार्थना, वर्धनम् = वृद्धि करने वाला, यस्य = जिसका, सोमः = सोम, यस्य = जिसका, इदम् = यह, राधः = धन, सः = वह, जनासः = हे मनुष्यों, इन्द्रः = इन्द्र है।

अनुवाद – जो सोम पीसने वाले की रक्षा करता है, जो (पुरोडाश) पकाने वाले की, जो प्रशंसा करने वाले की, जो परिश्रम करने वाले की (अपनी) सहायता से (रक्षा करता है), जिसकी वृद्धि करने वाला स्तोत्र है, जिसकी (वृद्धि करने वाला) सोम है, जिसकी (वृद्धि करने वाला) यह सम्पूर्ण धन है, हे मनुष्यों, वह इन्द्र है।

व्याकरण – **ऊती** स्वरक्षाविधिना अपने रक्षा के तरीके से।

विशेष – **शशमानम्** यह स्तोत्र का उच्चारणरूप परिश्रम करने वालों के लिये प्रयुक्त हुआ है।

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम।।15।।

अन्वय – (हे) इन्द्र, यः दुध्रः (सन्) पचते वाजम् आ दर्दषि सः (त्वम्) सत्यः किल असि। ते प्रियासः सुवीरासः वयं विश्वह विदथम् आवदेम।

शब्दार्थ – यः = जो, सुन्वते = सोमरस निकालने वाले के लिए, पचते = पुरोडाशादि पकाने वाले के लिए, वाजम् = अन्न अथवा बल, दुध्रः = दुर्धर्ष, चित् आदर अर्थ में प्रयुक्त निपात, आ दर्दर्षि = बार-बार देते हो, सः = वह, किल = निश्चित रूप से, असि = हो, सत्यः = सत्यस्वरूप, वयम् = हम लोग, ते = तुम्हारे, इन्द्र = हे इन्द्र, विश्वह = सर्वदा, प्रियासः = प्रिय, सुवीरासः = सुन्दर वीरों से युक्त, विदथम् = स्तोत्र, आ वदेम = बोलें।

अनुवाद – हे इन्द्र, दुर्धर्ष असह्य प्रभाव युक्त होकर भी जो तुम सोम पीसने वाले के लिये तथा (पुरोडाश) पकाने वाले के लिये बार-बार बल एवं अन्न प्रदान करते हो, वह तुम निश्चित ही सत्य हो। हे इन्द्र, तुम्हारे प्रिय हम लोग सुन्दर बहादुर पुत्रों से युक्त होकर सर्वदा सुन्दर स्तोत्र बोलें।

व्याकरण – **दुध्रः** = दुर्धर्ष, अत्यन्त भयानक।

विशेष – कुछ विद्वान् **वाजमाददर्शि** का अर्थ शत्रुविजय से प्राप्त धन को यजमान को प्राप्त कराते हो, ऐसा भी अर्थ करते है।

10.4 सवितृ (ऋग्वेद 1.35)

ऋषि – हिरण्यस्तूप, देवता – सविता।
ह्वयाम्यग्निं प्रथमं स्वस्तये ह्वयामि मित्रावरुणाविहावसे।
ह्वयामि रात्रीं जगतो निवेशनीं ह्वयामि देवं सवितारमूतये।।1।।

अन्वय – स्वस्तये प्रथमम् अग्निं ह्वयामि। इह अवसे मित्रावरुणौ ह्वयामि। जगतः निवेशनीं रात्रीं ह्वयामि। ऊतये देवं सवितारं ह्वयामि।

शब्दार्थ – ह्वयामि = बुलाता हूँ, अग्निम् = अग्नि को, प्रथमम् = प्रथम देव, स्वस्तये = कल्याण के लिये, ह्वयामि = बुलाता हूँ,, मित्रावरुणौ = मित्र और वरुण को, इह = यहाँ, अवसे = रक्षा के लिये, ह्वयामि = बुलाता हूँ, रात्रीम् = रात्रि को, जगतः = सम्पूर्ण जंगम लोक को, निवेशनीम् = उपवेशन जन्य सुखदात्री, ह्वयामि = बुलाता हूँ, देवम् = देव को, सवितारम् = सवितृ को, ऊतये = रक्षा के लिये।

अनुवाद – मैं प्रथम (देव) अग्नि को (अपने) कल्याण के लिये बुलाता हूँ, मित्र तथा वरुण को यहाँ रक्षा के लिये बुलाता हूँ, सम्पूर्ण जंगम लोक को आराम देने वाली रात्रि को बुलाता हूँ, सवितृ देव को रक्षा/सहायता के लिये बुलाता हूँ।

व्याकरण – अवसे = अव् रक्षणार्थक धातु से असुन् प्रत्यय, चतुर्थी एकवचन।

विशेष – मित्र एवं वरुण कर्मफलों के रक्षक एवं पाप-पुण्य के नियामक हैं। मित्र का सम्बन्ध दिवस तथा वरुण का रात्रि के कार्य निरीक्षण से है।

आ कृष्णेन रजसा वर्तमानो निवेशयन्नमृतं मर्त्यं च।
हिरण्ययेन सविता रथेना देवो याति भुवनानि पश्यन्।।2।।

अन्वय – कृष्णेन रजसा आवर्तमानः, अमृतं मर्त्यं च निवेशयन्, हिरण्ययेन रथेन देवः सविता भुवनानि पश्यन् आ याति।

शब्दार्थ – कृष्णेन = अन्धकारमय, रजसा = अन्तरिक्ष से, आवर्तमानः = लौटते हुए, निवेशयन् = अपने-अपने कार्य में लगाते हुए, अमृतम् = देवताओं को, मर्त्यम् = मनुष्यों को, च = और, हिरण्ययेन = स्वर्णमय, सविता = सवितृ देव, रथेन = रथ से, देवः = देव, आयाति = आ रहे हैं, भुवनानि = लोकों को, पश्यन् = देखते हुए।

अनुवाद – अन्धकारमय अन्तरिक्ष से (होकर) लौटते हुए, देवताओं तथा मनुष्यों को (अपने-अपने कार्यों में) प्रवृत्त करते हुए स्वर्णमय रथ पर (चढ़कर) सवितृ देव सम्पूर्ण भुवनों को देखते हुए आ रहे हैं।

व्याकरण – हिरण्ययेन = हिरण्य+मयट् के अनन्तर ऋत्व्यवास्त्वय (पा.सू. 6.4.175) सूत्र से मकार लोप से निपातित।

विशेष – सूर्य के कर्म का प्रतिपादन यहाँ प्राप्त होता है।

याति देवः प्रवता यात्युद्वता याति शुभ्राभ्यां यजतो हरिभ्याम् ।
आ देवो याति सविता परावतोऽप विश्वा दुरिता बाधमानः।।3।।

अन्वय – यजतः देवः शुभ्राभ्यां हरिभ्यां याति, प्रवता याति, उद्वता याति। देवः सविता विश्वा दुरिता अप बाधमानः परावतः आ याति।

शब्दार्थ – याति = जाते हैं, देवः = देव, प्रवता = नीचे के मार्ग से, याति = जाते हैं, उद्वता = ऊपर के मार्ग से, याति = जाते हैं, शुभ्राभ्याम् = सफेद रंग के, यजतः = पूजनीय, हरिभ्याम् = दो अश्वों के साथ, देवः = देव, आ याति = आ रहे हैं, सविता = सवितृ, परावतः = बहुत दूर से, विश्वा = सम्पूर्ण, दुरिता = पापों को, अपबाधमानः = नष्ट करते हुए।

अनुवाद – (सवितृ) देव नीचे (मार्ग) से जाते हैं ऊपर (मार्ग) से जाते हैं, पूज्यनीय (सवितृ देव) श्वेत रंग के दो अश्वों के साथ आते हैं। सम्पूर्ण बुराइयों/पापों को दूर/नष्ट करते हुए सवितृ देव बहुत दूर से आ रहे हैं।

व्याकरण – **प्रवता** प्र उपसर्गपूर्वक वन् धातु से क्विप् तृतीया एकवचन, **यजते** यत्र् धातु से कर्म में अतच् प्रत्यय करने पर निष्पन्न।

विशेष – सूर्य/सविता के त्रिविध मार्ग अवलम्बन का विशेष वर्णन है।

अभीवृतं कृशनैर्विश्वरूपं हिरण्यशम्यं यजतो बृहन्तम्।
आस्थाद्रथं सविता चित्रभानुः कृष्णा रजांसि तविषीं दधानः।।4।।

अन्वय – चित्रभानुः यजतः सविता कृष्ण रजांसि (प्रति) तविषीं दधानः कृशनैः अभिवृतं विश्वरूपं हिरण्यशम्यं बृहन्तं रथम् आ अस्थात्।

शब्दार्थ – अभीवृतम् = आमने-सामने से सुसज्जित, कृशनैः = स्वर्ण से, विश्वरूपं = विविध रू॰ वाले, हिरण्यशम्यम् = स्वर्ण कील वाले, यजतः = पूजनीय, बृहन्तम् = ऊँचे, आ अस्थात् = आरूढ़ हुए, रथम् = रथ पर, सविता = सवितृ देव, चित्रभानुः = विचित्र किरणों वाले, कृष्णा = अन्धकारमय, रजांसि = लोकों, तविषीम् = बल स्वकीय प्रकाशरूप, दधानः = धारण करते हुए।

अनुवाद – स्वर्ण से सुसज्जित, विविध रूप वाले, (रथ के जुआं में) स्वर्ण की कील वाले, ऊँचे रथ पर, विचित्र किरणों से युक्त, पूजनीय सवितृ देव, अन्धकारमय लोकों के विरुद्ध प्रकाशरूप शक्ति धारण करते हुए आरूढ़ हुए हैं।

व्याकरण – **तविषीं** = तव+टिषच्+ङीप्, द्वितीया एकवचन, **दधान** = धा धातु से लट् के स्थान पर शानच् करने पर।

विशेष – **कृशनम्** निघुण्ट पाठ में स्वर्ण के नामों में परिगणित है।

वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन् रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः।
शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः।।5।।

अन्वय – (सवितुः देवस्य) शितिपादः श्यावाः हिरण्यप्रउगं रथं वहन्तः जनान् वि अख्यन्। शश्वद् विशः विश्वा भुवनानि (च) दैव्यस्य सवितुः उपस्थे तस्थुः।

शब्दार्थ – जनान् = लोगों को, श्यावाः = सवितृ देव के अश्वों ने, शितिपादः = सफेद पैर वाले, व्यख्यन् = विशेष रूप से प्रकाशित किया है, रथम् = रथ को, हिरण्यप्रउगम् = स्वर्ण की कील वाले, वहन्तः = खींचते हुए, शश्वत् = सम्पूर्ण, विशः = निवास स्थान, सवितुः = सवितृ की, दैव्यस्य = देव, उपस्थे = गोद में, विश्वा = सम्पूर्ण, भुवनानि = लोक, तस्थुः = स्थित है।

अनुवाद – सफेद पैर वाले (सवितृ देव के) अश्वों ने, स्वर्णनिर्मित जुआं वाले रथ को खींचते हुये प्राणियों को विशेष रूप से प्रकाशित किया है। सम्पूर्ण निवास-स्थान तथा सम्पूर्ण लोक प्रकाशमान देव सवितृ की गोद में स्थित है।

व्याकरण – दैव्यः = देव ही दैव्य है, देव शब्द से स्वार्थ में यञ् प्रत्यय, **श्यावाः** = इस नामके सूर्य के अश्व होने के कारण यह सविता के नामों में निघण्टु में पढ़ा गया है।

विशेष – प्रउग = रथ के मुख और ईषा (दोनों) के आगे युगबन्धन का स्थान।

> **तिस्रो द्यावः सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट्।**
> **आणिं न रथ्यममृताधि तस्थुरिह ब्रवीतु य उ तच्चिकेतत्।।6।।**

अन्वय – तिस्रः द्यावः (सन्ति तेषां मध्ये) द्वौ सवितुः उपस्था, एका (या) विराषाट् यमस्य भुवने। अमृता आणिं न रथ्यम् अधि तस्थुः। यः उ तत् चिकेतत् इह ब्रवीतु।

शब्दार्थ – तिस्रः = तीन, द्यावः = द्युलोक, सवितुः = सवितृ देव की, द्वौ = दो लोक, उपस्था = गोद में, एका = एक, यमस्य = यम के, भुवने = लोक में, विराषाट् = मरे व्यक्तियों का निवास-स्थान, आणिम् = धुरा, न = तरह, रथ्यम् =रथ के, अमृता = अमर, अधि तस्थुः = आश्रित हैं, इह = यहाँ, ब्रवीतु = कहे, यः = जो, उ = निश्चित अर्थ का वाचक एक निपात, तत् = उसे, चिकेतत् = जाना है।

अनुवाद – तीन लोक (हैं), (उनमें से) दो सवितृ की गोद में (हैं), एक जो मरे व्यक्तियों का निवास-स्थान है, यम के लोक में (हैं)। (सम्पूर्ण) अमर (प्रकाशमान पदार्थ) रथ के धुरे की तरह उसी पर आश्रित है, (वह) जिसने (सवितृ देव के महत्त्व को) जाना है, यहाँ उसे कहे।

व्याकरण – विराषाट् = वृञ् वरणे धातु से घञर्थ में क प्रत्यय, तान् सहते इति **छन्दसि सह** सूत्र से ण्वि तथा **सहेः साडः सः** से षत्व।

विशेष – लोकत्रय का निरूपण यहाँ प्राप्त होता है।

> **वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद् गभीरवेपा असुरः सुनीथः।**
> **क्वे३दानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ।।7।।**

अन्वय – सुपर्णः गभीरवेपाः असुरः सुनीथः अन्तरिक्षाणि वि अख्यत्। इदानीं सूर्यः क्व? कः चिकेतः? अस्य रश्मिः कतमां द्यां ततान?

शब्दार्थ – सुपर्णः = सुन्दर किरण वाला, अन्तरिक्षाणि = अन्तरिक्ष लोकों को, व्यख्यत् = प्रकाशित किया है, गभीरवेपाः = गम्भीर कम्पनयुक्त किरणों वाले, असुरः = प्राण देने वाले, प्रज्ञावान्, सुनीथः = प्रशस्त रूप से मार्गदर्शन करने वाला, क्व = कहाँ, इदानीम् = इस समय, सूर्यः = सूर्य, कः = कौन, चिकेत = जाना है, कतमाम् = किस, द्याम् = लोक तक, रश्मिः = किरण, आ ततान = फैली है।

अनुवाद – सुन्दर एवं गम्भीर कम्पनयुक्त किरणों वाले, प्राण देने वाले तथा अच्छी प्रकार से नेतृत्व करने वाले सूर्य (जिन्होंने दिन में) अन्तरिक्ष लोकों को विशेष रूप से प्रकाशित किया था, इस समय (रात्रि में) कहाँ है और उनकी किरणें किस लोक तक फैली हैं, यह कौन जानता है?

व्याकरण – **सुनीथः** = सुपूर्वक नी धातु से क्थन् प्रत्यय, **चिकेत** = कित् धातु से लिट् में।

विशेष – असून् अर्थात् प्राणों को देने वाला **असुरः।**

अष्टौ व्यख्यत्ककुभः पृथिव्यास्त्री धन्व योजना सप्त सिन्धून्।
हिरण्याक्षः सविता देव आगाद्दधद्रत्ना दाशुषे वार्याणि ।।8।।

अन्वय – (सविता देवः) अष्टौ पृथिव्याः ककुभः, त्री योजना धन्व, सप्त सिन्धून् वि अख्यत्। हिरण्याक्षः सविता देवः दाशुषे वार्याणि रत्ना दधत् आ अगात्।

शब्दार्थ – अष्टौ = आठ, व्यख्यत् = प्रकाशित किया है, ककुभः = दिशाओं को, पृथिव्याः = पृथिवी के, त्री = तीन, धन्व = अन्तरिक्षादि को, योजना = प्राणियों के कर्मों को, सप्त = सात, सिन्धून् = नदियों को, हिरण्याक्षः = स्वर्णमयी आँख वाले, सविता = सवितृ, देवः = देव, आ अगात् = आये हैं, दधत् = धारण करते हुए, रत्ना = बहुमूल्य धनों को, दाशुषे = हवि प्रदान करने वाले के लिये, वार्याणि = वरणीय।

अनुवाद – पृथिवी की आठ दिशाओं, तीन अन्तरिक्षादि लोकों, प्राणियों के कर्मों तथा सात नदियों को (सवितृ देव ने) प्रकाशित किया है। स्वर्णमयी आँख वाले सवितृ देव, हवि प्रदान करने वाले के लिये वरणीय धन को धारण करते हुए आये हैं।

व्याकरण – **दधत्** धा धातु से शतृ प्रत्यय।

विशेष – हितकर एवं रमणीय होता है, **हिरण्यम्।**

हिरण्यपाणिः सविता विचर्षणिरुभे द्यावापृथिवी अन्तरीयते।
अपामीवां बाधते वेति सूर्यमभि कृष्णेनरजसा द्यामृणोति ।।9।।

अन्वय – हिरण्यपाणिः विचर्षणिः सविता उभे द्यावापृथिवी अन्तः ईयते, अमीवाम् अप बाधते, सूर्यं वेति, कृष्णेन रजसा द्याम् अभि ऋणोति।

शब्दार्थ – हिरण्यपाणिः = स्वर्णहस्त वाले, सविता = सवितृ, विचर्षणिः = सबको देखने वाले, उभे = दोनों, द्यावापृथिवी = द्युलोक तथा पृथिवी, अन्तः = मध्य में, ईयते = आते हैं, अमीवाम् = रोग को, अप बाधते = दूर करते हैं, वेति = जाते हैं, सूर्यम् = सूर्य के पास, कृष्णेन = अन्धकारयुक्त, रजसा = लोक से, द्याम् = आकाश को, अभि ऋणोति = व्याप्त करते हैं।

अनुवाद – स्वर्ण हस्त वाले, सबको देखने वाले, सविता देवता, दोनों आकाश तथा पृथिवी के बीच विचरण करते हैं। रोग को दूर करते हैं, सूर्य के पास जाते हैं, अन्धकारयुक्त लोक से (होकर) द्युलोक को व्याप्त करते हैं।

व्याकरण – **ऋणोति** = गत्यर्थक ऋणु धातु से तनादि में उः प्रत्यय।

विशेष – यहाँ सविता के विशिष्ट कर्मों का उल्लेख प्राप्त होता है।

हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ्।
अपसेधन् रक्षसोयातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः।।10।।

अन्वय – हिरण्यहस्तः असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववान् (सविता) अर्वाङ् यातु। (सविता) देवः रक्षसः यातुधानान् (च) अपसेधन् प्रतिदोषं गृणानः अस्थात्।

शब्दार्थ – हिरण्यहस्तः = स्वर्ण हस्त वाले, असुरः = प्राण देने वाले, सुनीथः = सुन्दर मार्गदर्शन करने वाले, सुमृळीकः = दयालु, स्ववान् = धनवान्, प्रकाशवान्, यातु = जावें, अर्वाङ् = हमारी तरफ, अपसेधन् = दूर करते हुये, रक्षसः = राक्षसों को, यातुधानान् = मायावियों को, अस्थात् = स्थित हुए हैं, देवः = देव, प्रतिदोषम् = प्रतिरात्रि को, गृणानः = स्तूयमान।

अनुवाद – स्वर्णहस्त वाले, प्राणदाता, सुन्दर मार्गदर्शक, दयालु तथा धनवान् सवितृ हमारी तरफ (यज्ञ में) आयें। प्रति रात्रि को स्तूयमान होते हुए देव (सवितृ) राक्षसों तथा मायावियों को दूर करते हुए अवस्थित होते हैं।

व्याकरण – **प्रतिदोषम्** दोषां दोषां प्रति वीप्सालक्षणे अर्थ में अव्ययीभाव समास।

विशेष – **यज्ञरक्षार्थ** सविता से प्रार्थना का उल्लेख प्राप्त होता है।

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव।।11।।

अन्वय – (हे) सवितः, ये ते पूर्व्यासः अरेणवः सुकृताः पन्थाः अन्तरिक्षे (सन्ति) तेभिः सुगेभिः पथिभिः अद्यः नः रक्ष। (हे) देव (नः) अधि ब्रूहि च।

शब्दार्थ – ये = जो, ते = तुम्हारे, पन्थाः = मार्ग, सवितः = हे सवितृ, पूर्व्यासः = पहिले के, अरेणवः = धूलिरहित, सुकृताः = अच्छी प्रकार से निर्मित, अन्तरिक्षे = अन्तरिक्ष में, तेभिः = उनसे, नः = हमारी, अद्य = आज, पथिभिः = मार्गों से, सुगेभिः = सुगम, रक्ष = रक्षा करो, च = और, नः = हमारी, च = और, अधि ब्रूहि = तरफ से बोलो, देव = हे देव।

अनुवाद – हे सवितृ, तुम्हारे प्राचीन तथा धूलि रहित मार्ग, जो अन्तरिक्ष में अच्छी प्रकार से निर्मित हैं, आज उन्हीं सुगम मार्गों से (यहाँ आकर) मेरी रक्षा करो तथा हे देव, हमारी तरफ से बोलो।

व्याकरण – **अरेणवः** = न सन्ति रेणवः येषु तथाभूताः बहुव्रीहि समास।

विशेष – सूर्य के मार्ग का वर्णन प्राप्त होता है।

10.5 शिवसंकल्प (यजुर्वेद 34.1-6)

ऋषि – शिवसंकल्प, देवता – मन।
यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरङ्गमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।1।।

अन्वय – यत् (मनः) जाग्रतः दूरम् उद् आ एति, यत् दैवम्, तत् (यत्) उ सुप्त य तथा एव एति, यत् दूरंगमम्, यत् ज्योतिषाम् एकं ज्योतिः, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ – यत् = जो मन, जाग्रतः = जागते हुए मनुष्य का, दूरम् = दूर, उदैति = जाता है, दैवम् = आत्मदर्शन करने वाला, तत् = जो, उ = और, सुप्तस्य = सोये हुए मनुष्य का, तथा = उसी प्रकार, एव = ही, एति = लौट आता है, दूरंगमम् = दूर जाने वाला अर्थात् अतीत, अनागत, वर्तमान सब पदार्थों को जानने वाला, ज्योतिषाम् = श्रोत्रादि ज्ञानेन्द्रियों का, ज्योतिः = प्रकाश, तत् = वह, मे = मेरा, मनः = मन, शिवसंकल्पम् = शुभ संकल्प वाला, अस्तु = हो।

अनुवाद – जो मन पुरुष की जाग्रत अवस्था में (नेत्र आदि अन्य ज्ञानेन्द्रियों की अपेक्षा) अधिक दूर जाता है, (जो) आत्मा का दर्शन करने वाला है, जो (पुरुष की) सुषुप्ति अवस्था में उसी प्रकार लौट आता है (जिस प्रकार जाग्रत अवस्था में दूर जाता है), (जो) दूर जाने वाला है, और जो सब बाह्य इन्द्रियों का एकमात्र प्रकाशक है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याकरण – **उदैति** = उत् एवं आ उपसर्गपूर्वक इण् गतौ धातु से निष्पन्न।

विशेष – मन की प्रकृति का प्रतिपादन प्राप्त होता है।

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।2।।

अन्वय – येन (मनसा) अपसः धीराः मनीषिणः यज्ञे विदथेषु (च) कर्माणि कृण्वन्ति, यत् अपूर्वम्, (यत्) यक्षम्, (यत्) प्रजानाम् अन्तः, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ – येन = जिस मन से, कर्माणि = काम, अपसः = कर्मनिष्ठ, कर्मठ प्रवृत्ति वाले, मनीषिणः = मेधावी पुरुष, यज्ञे = यज्ञ में, कृण्वन्ति = करते हैं, विदथेषु = ज्ञान होने पर, धीराः = बुद्धिमान् पुरुष, यत् = जो मन, अपूर्वम् = जिसके पूर्व कोई इन्द्रिय नहीं होती अर्थात् समस्त इन्द्रियों से पूर्व उत्पन्न, यक्षम् = यज्ञ करने में समर्थ अथवा समस्त इन्द्रियों से पूर्व उत्पन्न होने के कारण पूज्य, अन्तः = शरीर के भीतर, प्रजानाम् = प्रजा के, प्राणिमात्र के, तत् = वह, मे = मेरा, मनः = मन, शिवसंकल्पम् = शुभ संकल्प वाला, अस्तु = हो।

अनुवाद – जिस मन से कर्मनिष्ठ बुद्धिमान् मेधावी पुरुष यज्ञ में तथा पूजाओं में कर्म करते हैं, जो सबसे प्रथम उत्पन्न होता है और यज्ञ करने में समर्थ है और जो प्राणिमात्र के भीतर रहता है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याकरण – **अपसः** = अप यह कर्म का नाम है यह जिसमें विद्यमान हो वह अपस्वी।

विशेष – समस्त इन्द्रियों में मन के सर्वप्रथम उद्भव का वर्णन किया गया है।

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्ज्योतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किं चन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।3।।

अन्वय – यत् (मनः) प्रज्ञानम्, उत चेतः, धृतिः च, यत् प्रजासु अन्तः अमृतं ज्योतिः (अस्ति) यस्मात् ऋते किं चन कर्म न क्रियते, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ – यत् = जो मन, प्रज्ञानम् = विशेष ज्ञान का साधन, उत = और, चेतः = सामान्य ज्ञान कराने वाला, धृतिः = धैर्यरूप, च = और, यत् = जो, ज्योतिः = प्रकाशक, अन्तः = भीतर, अमृतम् = अमर, प्रजासु = प्राणियों में, यस्मात् = जिससे, न = नहीं, ऋते = बिना, किम् = कुछ, चन = भी, कर्म = काम, क्रियते = किया जाता है, तत् = वह, मे = मेरा, मनः = मन, शिवसंकल्पम् = शुभ संकल्प वाला, अस्तु = हो।

अनुवाद – जो मन विशेष ज्ञान और सामान्य ज्ञान (का साधन) है, जो धैर्यरूप है, जो प्राणियों के भीतर अमर ज्योति है, और जिसके बिना कोई काम नहीं किया जा सकता, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याकरण – चेतः = चिति संज्ञाने धातु से ण्यन्त में असुन् प्रत्यय, चेतयति अर्थात् सम्यक् रीति बताता है वह।

विशेष –मन के सायुज्याभाव में कार्य सिद्धि नहीं हो सकती ऐसा भाव प्रकट किया गया है।

येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।4।।

अन्वय – येन अमृतेन (मनसा) इदं भूतं भुवनं भविष्यत् सर्वं परिगृहीतम्, येन सप्तहोता यज्ञः तायते, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ – येन = जिस मन के द्वारा, इदम् = यह, भूतम् = भूतकाल का, भुवनम् = वर्तमान काल का, भविष्यत् = भविष्यत् काल का, परिगृहीतम् = जाना जाता है, अमृतेन = अमर मन के द्वारा, सर्वम् = संसार का सब वस्तुजगत, येन = जिस मन के द्वारा, यज्ञः = यज्ञ, तायते = किया जाता है, सप्तहोता = सात होता वाला अग्निष्टोम, तत् = वह, मे = मेरा, मनः = मन, शिवसंकल्पम् = शुभ संकल्प वाला, अस्तु = हो।

अनुवाद – जिस अमर (मन) के द्वारा इस संसार में भूत, भविष्य और वर्तमान काल के सब पदार्थ जाने जाते हैं, और जिसके द्वारा सात होता वाला (अग्निष्टोम) यज्ञ किया जाता है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याकरण – तायते = विस्तार्यते **तनोतेर्यकि** सूत्र से आकार।

विशेष – अग्निष्टोम = सोमयाग की सप्त संस्था में प्रथम है।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु ।।5।।

अन्वय – यस्मिन् (मनसि) ऋचः साम यजूंषि रथनाभौ आराः इव प्रतिष्ठिताः, यस्मिन् प्रजानां सर्वं चित्तम्, ओतम्, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ – यस्मिन् = जिस मन में, ऋचः = ऋचायें, साम = सामगान, यजूंषि = यजुष्, यस्मिन् = जिसमें, प्रतिष्ठिताः = प्रतिष्ठित हैं, रथनाभौ = रथचक्र की नाभि में, इव = समान, अराः = तिल्लियां, यस्मिन् = जिसमें, चित्तम् = ज्ञान, सर्वम् = सर्वपदार्थविषयक, ओतम् = व्याप्त है, प्रजानाम् = प्रजाओं का, तत् = वह, मे = मेरा, शिवसंकल्पम् = शुभ संकल्प वाला, अस्तु = हो।

अनुवाद – रथचक्र की नाभि में तिल्लियों की तरह जिस मन में ऋचायें, साम और यजुष् प्रतिष्ठित होते हैं, जिसमें प्राणियों का सर्वपदार्थ विषयक ज्ञान निहित है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याकरण – यजूंषि = यजुष् हलन्त नपुंसकलिंग शब्द प्रथमा बहुवचन।

विशेष – ज्ञान का केन्द्र मन को प्रतिष्ठित किया गया है।

सुसारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान्नेनीयतेऽभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत्प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।6।।

अन्वय – यत् (मनः) सुसारथिः अश्वान् इव, अभीशुभिः वाजिन इव मनुष्यान् नेनीयते, यत् हृत्प्रतिष्ठम्, अजिरं, जविष्ठम्, तत् मे मनः शिवसंकल्पम् अस्तु।

शब्दार्थ – सुसारथिः = अच्छा सारथी, अश्वान् = घोड़ों को, इव = समान, यत् = जो मन, मनुष्यान् = मनुष्यों को, नेनीयते = अत्यन्त इधर-उधर ले जाता है, अभीशुभिः = लगामों से, वाजिनः = घोड़ों को, इव = समान, हृत्प्रतिष्ठम् = हृदय में स्थित, यत् = जो मन, अजिरम् = जरारहित, जविष्ठम् = अतिशय वेगवान्, तत् = वह, मे = मेरा, मनः = मन, शिवसंकल्पम् = शुभ संकल्प वाला, अस्तु = हो।

अनुवाद – जो मन मनुष्यों को बार-बार इधर-उधर प्रेरित करता है जैसे अच्छा सारथी घोड़ों को लगामों द्वारा घोड़ों की तरह अपने वश में रखता है, जो हृदय में स्थित है, जो जरा से रहित और अत्यन्त वेगवान् है, वह मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो।

व्याकरण – **जविष्ठ** = जव गति/वेग के लिये प्रयुक्त है, अतः अतिशय गति से युक्त।

विशेष –मन की चंचलता एवं निग्रह का प्रतिपादन है।

10.6 सारांश

प्रिय विद्यार्थियों! इस इकाई में आपने अग्नि, इन्द्र, सवितृ और शिवसंकल्प सूक्त के मन्त्रों का अध्ययन किया। अग्निसूक्त में अग्नि देवताओं के लिये हवियों के वाहक की भूमिका में है। साथ ही समस्त यजमानों के प्रथम स्तुत्य भी है। अग्नि से यजमान विविध प्रकार के धन की पुष्टि हेतु तथा संरक्षण हेतु प्रार्थना करते हैं।

इन्द्र सूक्त में इन्द्र के स्वरूप एवं कार्यों का सम्यक्तया निरूपण किया गया है। इन्द्र वृष्टि का कारक है, यह वृत्र नामक असुर का वज्र से वधकर प्राणियों के लिये मेघों से वृष्टि करता है। इन्द्र अत्यन्त प्रभावशाली एवं स्तुत्य है।

सवितृ सूक्त सूर्य की गति, पराक्रम, प्रभाव, स्वरूप तथा कर्म को व्यक्त करता है। सूर्य अर्थात् सविता पाप तथा अन्धकार का नाशक होकर निरन्तर गतिशील रहता है। यह समस्त प्राणियों का प्रेरक भी है। इसकी प्रेरणा के प्रभाव से समस्त प्राणियों की प्रवृत्ति स्वकर्त्तव्य सम्पादन में होती है।

यजुर्वेदस्थ शिवसंकल्पसूक्त में एक ओर मन की गति एवं चंचलता का वर्णन है, वहीं दूसरी ओर मन के सायुज्य के अभाव में किसी कार्य की सिद्धि असम्भव है, अतः मन का निग्रह विविध कार्यों के सम्पादनार्थ आवश्यक है, यह प्रतिपादित किया गया है। वस्तुतः शरीर के द्वारा कार्य की पूर्णता कराने में मुख्य कारक मन ही है। अतः इस प्रकार का हमारा मन कल्याण के संकल्प से युक्त हो ऐसी प्रार्थना की गयी है।

10.7 शब्दावली

हविर्ग्राहक – हवि को ग्रहण करने वाला

स्तम्भित – रोका, स्तम्भ के समान दृढ़ करना

सोमपा – सोमरस का पान करने/पीने वाला

भुवन – लोक, यथा– पृथिवी लोक

निग्रह – नियन्त्रण, दबाना, संयमन करना

सायुज्याभाव – किसी में युक्त होने का भाव सायुज्य, एतद् अभाव कमी

वरणीय – चुनने योग्य, वरण करने योग्य

10.8 कुछ उपयोगी पुस्तकें

1. **द न्यू वैदिक सिलेक्शन** प्रथम एवं द्वितीय भाग, तैलंग एवं चौबे, भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी।
2. **ऋग्वेद संहिता,** सायण भाष्य, राष्ट्रियसंस्कृतसंस्थानम्, नई दिल्ली।
3. **शुक्लयजुर्वेदसंहिता,** महीधर भाष्य, जगदीश लाल शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास।
4. **अथर्ववेद संहिता,** सायण भाष्य,विश्वेश्वरानन्द वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर।

10.9 अभ्यास प्रश्न

1. अग्नि सूक्त के आधार पर अग्नि की विविध भूमिकाओं का वर्णन कीजिए।
2. ''**अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे। यशसं वीरवत्तमम्।।**'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
3. इन्द्र के कर्मों का उल्लेख कीजिए।
4. ''**यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।**

   यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत्स जनास इन्द्रः।।'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
5. सवितृ सूक्त के सार को संक्षेप में प्रकट कीजिए।
6. ''**वि जनाञ्छ्यावाः शितिपादो अख्यन् रथं हिरण्यप्रउगं वहन्तः।**

   शश्वद्विशः सवितुर्दैव्यस्योपस्थे विश्वा भुवनानि तस्थुः।।'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
7. ''**येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।**

   येन यज्ञस्तायते सप्तहोता तन्मे मनः शिवसङ्कल्पमस्तु।।'' मन्त्र की ससन्दर्भ व्याख्या कीजिए।
8. शिवसंकल्पसूक्त में किस प्रकार की कामना की गयी हैं? संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।